आस्रव–संवर

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

आस्रव का अर्थ है– कर्मों के आने का द्वार। आत्मा के भीतर अष्ट कर्मों का आना आस्रव कहलाता है। आत्मा के साथ जुड़ने वाले कर्मास्रव हैं। आत्मा और कर्म का अस्तित्व पृथक्–पृथक् है। पंचास्रव का अर्थ है– पाँच कर्मों के आने का द्वार। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग पंचास्रव कहलाते हैं। पाप एवं पुण्य का आत्मा की तरफ आकर्षित होना आस्रव है। आत्मा शुद्ध–बुद्ध और मुक्त है। यह रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से रहित है। कर्म रज के संयोग से आत्मा मलिन हो जाता है। मन, वचन और काया कर्मों का भुगतान करने के लिए हैं। आत्मा की तरफ कर्मरज कैसे आकर्षित होते हैं, इसको एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। जैसे तालाब में किसी स्थान पर छेद बनाकर उसमें पाईप डालकर जगह बना दी जाये तो उसके अन्दर शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार का जल चला जाता है। जल के प्रवेश होने से तालाब जल से भर जाता है। वैसे ही आत्मा में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के द्वारा कर्म रज आत्मा के साथ मिलकर आत्मा को मलिन बना देते हैं। इसको रोक देने से आत्मा अपने स्वसरूप में अवस्थित रहता है।

पंचास्रव में सबसे पहले मिथ्यात्व की गणना होती है। मिथ्यात्व का अर्थ है– दृष्टि का विपरित होना। जीव को अजीव समझना, साधु को असाधु समझना, शुद्ध को अशुद्ध समझना और सत्य को असत्य मानना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के कारण दृष्टि मलिन हो जाती है। सब कुछ विपरित दिखने लगता है। दृष्टि के मलिन होने से हम गन्तव्य तक नहीं पहुंच सकते। मिथ्या दृष्टि के कारण चौरासी लाख योनियों में भ्रमण होता है। द्वितीय आस्रव अविरति है। अविरति का अर्थ है, धार्मिक क्रिया में रुचि न होना, पूजा–पाठ, सामायिक, ईश्वर भक्ति में रूचि न होना। अपने अस्तित्व का ज्ञान न होना अविरति है। खाओ–पीओ और मस्त रहो के प्रति रुचि अधिक होती है। सम्पत्ति, पद प्रतिष्ठा में लिप्त रहना अविरति है। इसे छोड़ना विरति है।

पंचास्रव में तीसरा स्थान प्रमाद का है। प्रमाद का अर्थ है आलस्य। आलस्य ही मनुष्य के शरीर का सबसे बड़ा शत्रु है। कहा भी गया है– **आलस्यो हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपु** अर्थात आलस्य मनुष्य के शरीर में स्थित सबसे बड़ा शत्रु है। आलस्य के कारण मनुष्य का जीवन शिथिल हो जाता है। किसी कार्य में उसकी रुचि नहीं रहती। अगला आस्रव है कषाय। कषाय का अर्थ है रंगा हुआ। आत्मा के साथ क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष का रहना कषाय कहलाता है। राग और द्वेष आत्मा का घात करते हैं। ये कर्मों को बढ़ाते हैं। राग–द्वेष संसार के कारण है और वीतराग संसार से मुक्त होना है। मुक्त होने के लिए राग–द्वेष को जीतकर समता भाव धारण करना पड़ता है। प्रियता–अप्रियता से मुक्त हो जाना समता भाव है। परिस्थितियों की प्रताड़ना से मुक्त होना आवश्यक होता है।

अन्तिम आस्रव योग है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। वाणी के द्वारा हम एक–दूसरे से सम्पर्क करते हैं। इसलिए मनुष्य को हित, मित वचन बोलना चाहिए। सभी के साथ मधुर सम्बन्ध बनाना चाहिए। वाणी से सबको वश में किया जा सकता है। मानव शरीर के द्वारा प्रवृत्ति करता है। यदि प्रवृत्ति शुभ होती है तो भाव शुभ होते हैं। सामायिक करने से सब प्रकार की हिंसा रूक जाती है। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है– सावद्य प्रवृत्ति और निरवद्य प्रवृत्ति। सावद्य प्रवृत्ति पापकारी प्रवृत्ति है। इससे अशुभ भाव जागृत होते हैं। निरवद्य प्रवृत्ति शुभ प्रवृत्ति है। इसके द्वारा शुभ भाव जागृत होते हैं।

कर्मों के प्रवेश द्वार को बन्द कर देना संवर है। सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, मोह व कषायहीन शुद्धात्म परिणति तथा मन, वचन, काय के व्यापार की निवृत्ति ये सब नवीन कर्मों के निरोध के हेतु होने से संवर हैं। आसव्र का निरोध करना ही संवर है। जिनसे कर्म रुकें, वह कर्मों का रुकना संवर है। नगर के द्वार अच्छी तरह बन्द हों, वह नगर शत्रुओं को अगम्य हो जाता है। जीव का चरम और परम लक्ष्य है– मोक्ष प्राप्ति। जिसने समस्त कर्मों का क्षय करके अपने साध्य को सिद्ध कर सफलता प्राप्त कर ली, वह मोक्ष का अधिकारी है। बन्ध हेतुओं मिथ्यात्व व कषाय आदि के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है।

कर्मों का पूर्ण रूप से छूटना मोक्ष है। सम्यग् दर्शनादि कारणों से सम्पूर्ण कर्मों का आत्यान्तिक मूलोच्छेद होना मोक्ष है। जिस प्रकार बन्धन युक्त प्राणी स्वतन्त्र होकर यथेच्छ गमन करता है,

उसी तरह कर्म–बन्धन मुक्त आत्मा स्वाधीन हो अपने अनन्त ज्ञानदर्शन सुख आदि का अनुभव करता है। मनुष्य गति से ही जीव को मोक्ष होना संभव है। आयु के अन्त में उसका शरीर कपूरवत उड़ जाता है और वह स्वाभाविक ऊर्ध्व गति के कारण लोक शिखर पर जा विराजता है, जहाँ वह अनन्तकाल तक अनन्त अतीन्द्रिय सुख का उपभोग करते हुए अपने चरम शरीर के आकार रूप से स्थित रहता है और पुनः शरीर धारण करके जन्म–मरण के चक्कर में कभी नहीं पड़ता। ज्ञान ही उनका शरीर होता है। आस्रव आगमन द्वार है और संवर कर्म निरोध द्वार है। कर्मों का आत्मा की तरफ आकर्षण अवरुद्ध हो जाने पर आत्मा निर्मल हो जाता है। इसलिए आस्रव और संवर को जानना आवश्यक है।